श्रीमद् भगवदगीता – ग्यारहवाँ अध्याय

अनुक्रम

ग्यारहवें अध्याय का माहात्म्य 1
ग्यारहवाँ अध्यायः विश्वरूपदर्शनयोग 5

ग्यारहवें अध्याय का माहात्म्य

श्री महादेवजी कहते हैं – प्रिये ! गीता के वर्णन से सम्बन्ध रखने वाली कथा और विश्वरूप अध्याय के पावन माहात्म्य को श्रवण करो। विशाल नेत्रों वाली पार्वती ! इस अध्याय के माहात्म्य का पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके सम्बन्ध में सहस्रों कथाएँ हैं। उनमें से एक यहाँ कही जाती है। प्रणीता नदी के तट पर मेघंकर नाम से विख्यात एक बहुत बड़ा नगर है। उसके प्राकार (चारदीवारी) और गोपुर (द्वार) बहुत ऊँचे हैं। वहाँ बड़ी-बड़ी विश्रामशालाएँ हैं, जिनमें सोने के खम्भे शोभा दे रहे हैं। उस नगर में श्रीमान, सुखी, शान्त, सदाचारी तथा जितेन्द्रिय मनुष्यों का निवास है। वहाँ हाथ में शारंग नामक धनुष धारण करने वाले जगदीश्वर भगवान विष्णु विराजमान हैं। वे परब्रह्म के साकार स्वरूप हैं, संसार के नेत्रों को जीवन प्रदान करने वाले हैं। उनका गौरवपूर्ण श्रीविग्रह भगवती लक्ष्मी के नेत्र-कमलों द्वारा पूजित होता है। भगवान की वह झाँकी वामन-अवतार की है। मेघ के समान उनका श्यामवर्ण तथा कोमल आकृति है। वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न शोभा पाता है। वे कमल और वनमाला से सुशोभित हैं। अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हो भगवान वामन रत्नयुक्त समुद्र के सदृश जान पड़ते हैं। पीताम्बर से उनके श्याम विग्रह की कान्ति ऐसी प्रतीत होती है, मानो चमकती हुई बिजली से घिरा हुआ स्निग्ध मेघ शोभा पा रहा हो। उन भगवान वामन का दर्शन करके जीव जन्म और संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है। उस नगर में मेखला नामक महान तीर्थ है, जिसमें स्नान करके मनुष्य शाश्वत वैकुण्ठधाम को प्राप्त होता है। वहाँ जगत के स्वामी करुणासागर भगवान नृसिंह का दर्शन करने से मनुष्य के सात जन्मों के किये हुए घोर पाप से छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य मेखला में गणेशजी का दर्शन करता है, वह सदा दुस्तर विघ्नों से पार हो जाता है।

उसी मेघंकर नगर में कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो ब्रह्मचर्यपरायण, ममता और अहंकार से रहित, वेद शास्त्रों में प्रवीण, जितेन्द्रिय तथा भगवान वासुदेव के शरणागत थे। उनका नाम सुनन्द था। प्रिये ! वे शारंग धनुष धारण करने वाले भगवान के पास गीता के

ग्यारहवें अध्याय-विश्वरूपदर्शनयोग का पाठ किया करते थे। उस अध्याय के प्रभाव से उन्हें ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो गयी थी। परमानन्द-संदोह से पूर्ण उत्तम ज्ञानमयी समाधी के द्वारा इन्द्रियों के अन्तर्मुख हो जाने के कारण वे निश्चल स्थिति को प्राप्त हो गये थे और सदा जीवन्मुक्त योगी की स्थिति में रहते थे। एक समय जब बृहस्पति सिंह राशि पर स्थित थे, महायोगी सुनन्द ने गोदावरी तीर्थ की यात्रा आरम्भ की। वे क्रमशः विरजतीर्थ, तारातीर्थ, कपिलासंगम, अष्टतीर्थ, कपिलाद्वार, नृसिंहवन, अम्बिकापुरी तथा करस्थानपुर आदि क्षेत्रों में स्नान और दर्शन करते हुए विवादमण्डप नामक नगर में आये। वहाँ उन्होंने प्रत्येक घर में जाकर अपने ठहरने के लिए स्थान माँगा, परन्तु कहीं भी उन्हें स्थान नहीं मिला। अन्त में गाँव के मुखिया ने उन्हें बहुत बड़ी धर्मशाला दिखा दी। ब्राह्मण ने साथियों सहित उसके भीतर जाकर रात में निवास किया। सबेरा होने पर उन्होंने अपने को तो धर्मशाला के बाहर पाया, किंतु उनके और साथी नहीं दिखाई दिये। वे उन्हें खोजने के लिए चले, इतने में ही ग्रामपाल (मुखिये) से उनकी भेंट हो गयी। ग्रामपाल ने कहाः "मुनिश्रेष्ठ ! तुम सब प्रकार से दीर्घायु जान पड़ते हो। सौभाग्यशाली तथा पुण्यवान पुरुषों में तुम सबसे पवित्र हो। तुम्हारे भीतर कोई लोकोत्तर प्रभाव विद्यमान है। तुम्हारे साथी कहाँ गये? कैसे इस भवन से बाहर हुए? इसका पता लगाओ। मैं तुम्हारे सामने इतना ही कहता हूँ कि तुम्हारे जैसा तपस्वी मुझे दूसरा कोई दिखाई नहीं देता। विप्रवर ! तुम्हें किस महामन्त्र का ज्ञान है? किस विद्या का आश्रय लेते हो तथा किस देवता की दया से तुम्हे अलौकिक शक्ति प्राप्त हो गयी हैं? भगवन ! कृपा करके इस गाँव में रहो। मैं तुम्हारी सब प्रकार से सेवा-सुश्रूषा करूँगा।

यह कहकर ग्रामपाल ने मुनीश्वर सुनन्द को अपने गाँव में ठहरा लिया। वह दिन रात बड़ी भक्ति से उसकी सेवा टहल करने लगा। जब सात-आठ दिन बीत गये, तब एक दिन प्रातःकाल आकर वह बहुत दुःखी हो महात्मा के सामने रोने लगा और बोलाः "हाय ! आज रात में राक्षस ने मुझ भाग्यहीन को बेटे को चबा लिया है। मेरा पुत्र बड़ा ही गुणवान और भक्तिमान था।" ग्रामपाल के इस प्रकार कहने पर योगी सुनन्द ने पूछाः "कहाँ है वह राक्षस? और किस प्रकार उसने तुम्हारे पुत्र का भक्षण किया है?"

ग्रामपाल बोलाः ब्रह्मण ! इस नगर में एक बड़ा भयंकर नरभक्षी राक्षस रहता है। वह प्रतिदिन आकर इस नगर में मनुष्यों को खा लिया करता था। तब एक दिन समस्त नगरवासियों ने मिलकर उससे प्रार्थना कीः "राक्षस ! तुम हम सब लोगों की रक्षा करो। हम तुम्हारे लिए भोजन की व्यवस्था किये देते हैं। यहाँ बाहर के जो पथिक रात में आकर नींद लेंगे, उनको खा जाना।" इस प्रकार नागरिक मनुष्यों ने गाँव के (मुझ) मुखिया द्वारा इस धर्मशाला में भेजे हुए पथिकों को ही राक्षस का आहार निश्चित किया। अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए उन्हें ऐसा करना पड़ा। आप भी अन्य राहगीरों के

साथ इस घर में आकर सोये थे, किंतु राक्षस ने उन सब को तो खा लिया, केवल तुम्हें छोड़ दिया है। द्विजोतम ! तुममें ऐसा क्या प्रभाव है, इस बात को तुम्हीं जानते हो। इस समय मेरे पुत्र का एक मित्र आया था, किंतु मैं उसे पहचान न सका। वह मेरे पुत्र को बहुत ही प्रिय था, किंतु अन्य राहगीरों के साथ उसे भी मैंने उसी धर्मशाला में भेज दिया। मेरे पुत्र ने जब सुना कि मेरा मित्र भी उसमें प्रवेश कर गया है, तब वह उसे वहाँ से ले आने के लिए गया, परन्तु राक्षस ने उसे भी खा लिया। आज सवेरे मैंने बहुत दुःखी होकर उस पिशाच से पूछाः "ओ दुष्टात्मन् ! तूने रात में मेरे पुत्र को भी खा लिया। तेरे पेट में पड़ा हुआ मेरा पुत्र जिससे जीवित हो सके, ऐसा कोई उपाय यदि हो तो बता।"

राक्षस ने कहाः ग्रामपाल ! धर्मशाला के भीतर घुसे हुए तुम्हारे पुत्र को न जानने के कारण मैंने भक्षण किया है। अन्य पथिकों के साथ तुम्हारा पुत्र भी अनजाने में ही मेरा ग्रास बन गया है। वह मेरे उदर में जिस प्रकार जीवित और रक्षित रह सकता है, वह उपाय स्वयं विधाता ने ही कर दिया है। जो ब्राह्मण सदा गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ करता हो, उसके प्रभाव से मेरी मुक्ति होगी और मरे हुओं को पुनः जीवन प्राप्त होगा। यहाँ कोई ब्राह्मण रहते हैं, जिनको मैंने एक दिन धर्मशाला से बाहर कर दिया था। वे निरन्तर गीता के ग्यारहवें अध्याय का जप किया करते हैं। इस अध्याय के मंत्र से सात बार अभिमन्त्रित करके यदि वे मेरे ऊपर जल का छींटा दें तो निःसंदेह मेरा शाप से उद्धार हो जाएगा। इस प्रकार उस राक्षस का संदेश पाकर मैं तुम्हारे निकट आया हूँ।

ग्रामपाल बोलाः ब्रह्मण ! पहले इस गाँव में कोई किसान ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह अगहनी के खेत की क्यारियों की रक्षा करने में लगा था। वहाँ से थोड़ी ही दूर पर एक बहुत बड़ा गिद्ध किसी राही को मार कर खा रहा था। उसी समय एक तपस्वी कहीं से आ निकले, जो उस राही को लिए दूर से ही दया दिखाते आ रहे थे। गिद्ध उस राही को खाकर आकाश में उड़ गया। तब उस तपस्वी ने उस किसान से कहाः "ओ दुष्ट हलवाहे ! तुझे धिक्कार है ! तू बड़ा ही कठोर और निर्दयी है। दूसरे की रक्षा से मुँह मोड़कर केवल पेट पालने के धंधे में लगा है। तेरा जीवन नष्टप्राय है। अरे ! शक्ति होते हुए भी जो चोर, दाढ़वाले जीव, सर्प, शत्रु, अग्नि, विष, जल, गीध, राक्षस, भूत तथा बेताल आदि के द्वारा घायल हुए मनुष्यों की उपेक्षा करता है, वह उनके वध का फल पाता है। जो शक्तिशाली होकर भी चोर आदि के चंगुल में फँसे हुए ब्राह्मण को छुड़ाने की चेष्टा नहीं करता, वह घोर नरक में पड़ता है और पुनः भेड़िये की योनि में जन्म लेता है। जो वन में मारे जाते हुए तथा गिद्ध और व्याघ्र की दृष्टि में पड़े हुए जीव की रक्षा के लिए 'छोड़ो....छोड़ो...' की पुकार करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। जो मनुष्य गौओं की रक्षा के लिए व्याघ्र, भील तथा दुष्ट राजाओं के हाथ से मारे जाते हैं, वे भगवान विष्णु के परम पद को प्राप्त होते हैं जो योगियों के लिए भी दुर्लभ है। सहस्र अश्वमेध और सौ

वाजपेय यज्ञ मिलकर शरणागत-रक्षा की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हो सकते। दीन तथा भयभीत जीव की उपेक्षा करने से पुण्यवान पुरुष भी समय आने पर कुम्भीपाक नामक नरक में पकाया जाता है। तूने दुष्ट गिद्ध के द्वारा खाये जाते हुए राही को देखकर उसे बचाने में समर्थ होते हुए भी जो उसकी रक्षा नहीं की, इससे तू निर्दयी जान पड़ता है, अतः तू राक्षस हो जा।

हलवाहा बोलाः महात्मन् ! मैं यहाँ उपस्थित अवश्य था, किंतु मेरे नेत्र बहुत देर से खेत की रक्षा में लगे थे, अतः पास होने पर भी गिद्ध के द्वारा मारे जाते हुए इस मनुष्य को मैं नहीं जान सका। अतः मुझ दीन पर आपको अनुग्रह करना चाहिए।

तपस्वी ब्राह्मण ने कहाः जो प्रतिदिन गीता के ग्यारहवें अध्याय का जप करता है, उस मनुष्य के द्वारा अभिमन्त्रित जल जब तुम्हारे मस्तक पर पड़ेगा, उस समय तुम्हे शाप से छुटकारा मिल जायेगा।

यह कहकर तपस्वी ब्राह्मण चले गये और वह हलवाहा राक्षस हो गया। अतः द्विजश्रेष्ठ ! तुम चलो और ग्यारहवें अध्याय से तीर्थ के जल को अभिमन्त्रित करो फिल अपने ही हाथ से उस राक्षस के मस्तक पर उसे छिड़क दो।

ग्रामपाल की यह सारी प्रार्थना सुनकर ब्राह्मण के हृदय में करुणा भर आयी। वे 'बहुत अच्छा' कहकर उसके साथ राक्षस के निकट गये। वे ब्राह्मण योगी थे। उन्होंने विश्वरूपदर्शन नामक ग्यारहवें अध्याय से जल अभिमन्त्रित करके उस राक्षस के मस्तक पर डाला। गीता के ग्यारहवें अध्याय के प्रभाव से वह शाप से मुक्त हो गया। उसने राक्षस-देह का परित्याग करके चतुर्भुजरूप धारण कर लिया तथा उसने जिन सहस्रों प्राणियों का भक्षण किया था, वे भी शंख, चक्र और गदा धारण किये हुए चतुर्भुजरूप हो गये। तत्पश्चात् वे सभी विमान पर आरूढ़ हुए। इतने में ही ग्रामपाल ने राक्षस से कहाः "निशाचर ! मेरा पुत्र कौन है? उसे दिखाओ।" उसके यों कहने पर दिव्य बुद्धिवाले राक्षस ने कहाः 'ये जो तमाल के समान श्याम, चार भुजाधारी, माणिक्यमय मुकुट से सुशोभित तथा दिव्य मणियों के बने हुए कुण्डलों से अलंकृत हैं, हार पहनने के कारण जिनके कन्धे मनोहर प्रतीत होते हैं, जो सोने के भुजबंदों से विभूषित, कमल के समान नेत्रवाले, स्निग्धरूप तथा हाथ में कमल लिए हुए हैं और दिव्य विमान पर बैठकर देवत्व के प्राप्त हो चुके हैं, इन्हीं को अपना पुत्र समझो।' यह सुनकर ग्रामपाल ने उसी रूप में अपने पुत्र को देखा और उसे अपने घर ले जाना चाहा। यह देख उसका पुत्र हँस पड़ा और इस प्रकार कहने लगा।

पुत्र बोलाः ग्रामपाल ! कई बार तुम भी मेरे पुत्र हो चुके हो। पहले मैं तुम्हारा पुत्र था, किंतु अब देवता हो गया हूँ। इन ब्राह्मण देवता के प्रसाद से वैकुण्ठधाम को जाऊँगा। देखो, यह निशाचर भी चतुर्भुजरूप को प्राप्त हो गया। ग्यारहवें अध्याय के माहात्म्य से

यह सब लोगों के साथ श्रीविष्णुधाम को जा रहा है। अतः तुम भी इन ब्राह्मणदेव से गीता के ग्यारहवें अध्याय का अध्ययन करो और निरन्तर उसका जप करते रहो। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारी भी ऐसी ही उत्तम गति होगी। तात ! मनुष्यों के लिए साधु पुरुषों का संग सर्वथा दुर्लभ है। वह भी इस समय तुम्हें प्राप्त है। अतः अपना अभीष्ट सिद्ध करो। धन, भोग, दान, यज्ञ, तपस्या और पूर्वकर्मों से क्या लेना है? विश्वरूपाध्याय के पाठ से ही परम कल्याण की प्राप्ति हो जाती है।

पूर्णानन्दसंदोहस्वरूप श्रीकृष्ण नामक ब्रह्म के मुख से कुरुक्षेत्र में अपने मित्र अर्जुन के प्रति जो अमृतमय उपदेश निकला था, वही श्रीविष्णु का परम तात्त्विक रूप है। तुम उसी का चिन्तन करो। वह मोक्ष के लिए प्रसिद्ध रसायन। संसार-भय से डरे हुए मनुष्यों की आधि-व्याधि का विनाशक तथा अनेक जन्म के दुःखों का नाश करने वाला है। मैं उसके सिवा दूसरे किसी साधन को ऐसा नहीं देखता, अतः उसी का अभ्यास करो।

श्री महादेव कहते हैं – यह कहकर वह सबके साथ श्रीविष्णु के परम धाम को चला गया। तब ग्रामपाल ने ब्राह्मण के मुख से उस अध्याय को पढ़ा फिर वे दोनों ही उसके माहात्म्य से विष्णुधाम को चले गये। पार्वती ! इस प्रकार तुम्हें ग्यारहवें अध्याय की माहात्म्य की कथा सुनायी है। इसके श्रवणमात्र से महान पातकों का नाश हो जाता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

(अनुक्रम)

ग्यारहवाँ अध्यायः विश्वरूपदर्शनयोग

दसवें अध्याय के सातवें श्लोक तक भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी विभूति, योगशक्ति तथा उसे जानने के माहात्म्य का संक्षेप में वर्णन किया है। फिर ग्यारहवें श्लोक तक भक्तियोग तथा उसका फल बताया। इस विषय पर श्लोक 12 से 18 तक अर्जुन ने भगवान की स्तुति करके दिव्य विभूतियों का तथा योगशक्ति का विस्तृत वर्णन करने के लिए प्रार्थना की है, इसलिए भगवान श्री कृष्ण का विस्तृत वर्णन करने के लिए प्रार्थना की है, इसलिए भगवान श्री कृष्ण ने 40वें श्लोक तक अपनी विभूतियों का वर्णन समाप्त करके आखिर में योगशक्ति का प्रभाव बताया और समस्त ब्रह्मांड को अपने एक अंश से धारण किया हुआ बताकर अध्याय समाप्त किया। यह सुनकर अर्जुन के मन में उस महान स्वरूप को प्रत्यक्ष देखने की इच्छा हुई। इस ग्यारहवें अध्याय के आरम्भ में पहले चार श्लोक में भगवान की तथा उनके उपदेश की बहुत प्रशंसा करते हुए अर्जुन अपने को विश्वरूप का दर्शन कराने के लिए भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं –

।। अथैकादशोऽध्यायः ।।

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।

यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।।1।।

अर्जुन बोलेः मुझ पर अनुग्रह करने के लिए आपने जो परम गोपनीय अध्यात्मविषयक वचन अर्थात् उपदेश कहा, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है।(1)

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।

त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्।।2।।

क्योंकि हे कमलनेत्र ! मैंने आपसे भूतों की उत्पत्ति और प्रलय विस्तारपूर्वक सुने हैं तथा आपकी अविनाशी महिमा भी सुनी है।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।

द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।।3।।

हे परमेश्वर ! आप अपने को जैसा कहते हैं, यह ठीक ऐसा ही है परन्तु हे पुरुषोत्तम ! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज से युक्त ऐश्वर्यमय-रूप को मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।(3)

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।

योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।।4।।

हे प्रभो ! यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना शक्य है – ऐसा आप मानते हैं, तो हे योगेश्वर ! उस अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइये।(4)

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।

नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।।5।।

श्री भगवान बोलेः हे पार्थ ! अब तू मेरे सैंकड़ों-हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा नाना आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख।(5)

पश्यदित्यान्वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।

बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत।।6।।

हे भरतवंशी अर्जुन ! तू मुझमें आदित्यों को अर्थात् अदिति के द्वादश पुत्रों को, आठ वसुओं को, एकादश रुद्रों को, दोनों अश्विनीकुमारों को और उनचास मरुदगणों को देख तथा और भी बहुत से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख।(6)

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।

मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि।।7।।

हे अर्जुन ! अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित चराचरसहित सम्पूर्ण जगत को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता है सो देख।(7)

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।8।।

परन्तु मुझको तू इन अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने में निःसंदेह समर्थ नहीं है। इसी से मैं तुझे दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु देता हूँ। इससे तू मेरी ईश्वरीय योगशक्ति को देख।(8)

संजय उवाच
एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्।।9।।
अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्।।10।।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्।।11।।

संजय बोलेः हे राजन ! महायोगेश्वर और सब पापों के नाश करने वाले भगवान ने इस प्रकार कहकर उसके पश्चात् अर्जुन को परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखलाया। अनेक मुख और नेत्रों से युक्त, अनेक अदभुत दर्शनोंवाले, बहुत से दिव्य भूषणों से युक्त और बहुत से दिव्य शस्त्रों को हाथों में उठाये हुए, दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किये हुए और दिव्य गन्ध का सारे शरीर में लेप किये हुए, सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमारहित और सब ओर मुख किये हुए विराटस्वरूप परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा। (9,10,11)

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः।।12।।

आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित् ही हो।(12)

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपशयद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा।।13।।

पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उस समय अनेक प्रकार से विभक्त अर्थात् पृथक-पृथक, सम्पूर्ण जगत को देवों के देव श्रीकृष्ण भगवान के उस शरीर में एक जगह स्थित देखा।(13)

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत।।14।।

उसके अनन्तर वे आश्चर्य से चकित और पुलकित शरीर अर्जुन प्रकाशमय विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धा-भक्तिसहित सिर से प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोलेः।(14)

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।।15।।

अर्जुन बोलेः हे देव ! मैं आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को कमल के आसन पर विराजित ब्रह्मा को, महादेव को और सम्पूर्ण ऋषियो को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ।(15)

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।।16।।

हे सम्पूर्ण विश्व के स्वामिन् ! आपको अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूँ। हे विश्वरूप ! मैं आपके न तो अन्त को देखता हूँ, न मध्य को और न आदि को ही।(16)

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्।।17।।

आपको मैं मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त तथा सब ओर से प्रकाशमान तेज के पुंज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त, कठिनता से देखे जाने योग्य और सब ओर से अप्रमेयस्वरूप देखता हूँ।(17)

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।।18।।

आप ही जानने योग्य परम अक्षर अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं, आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं। ऐसा मेरा मत है।(18)

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-

मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।।19।।

आपको आदि, अन्त और मध्य से रहित, अनन्त सामर्थ्य से युक्त, अनन्त भुजावाले, चन्द्र-सूर्यरूप नेत्रोंवाले, प्रज्जवलित अग्निरूप मुखवाले और अपने तेज से इस जगत को संतप्त करते हुए देखता हूँ।(19)

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वादभुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।।20।।

हे महात्मन् ! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएँ एक आपसे ही परिपूर्ण हैं तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक अति व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।(20)

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद् भीताः प्रांजलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभीः पुष्कलाभिः।।

वे ही देवताओं के समूह आपमें प्रवेश करते है और कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े आपके नाम और गुणों का उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और सिद्धों के समुदाय 'कल्याण हो' ऐसा कहकर उत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं।(21)

रूद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे।।22।।

जो ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य तथा आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार तथा मरुदगण और पितरों का समुदाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धों के समुदाय हैं – वे सब ही विस्मित होकर आपको देखते हैं।(22)

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्।।23।।

हे महाबाहो ! आपके बहुत मुख और नेत्रों वाले, बहुत हाथ, जंघा और पैरों वाले, बहुत उदरों वाले और बहुत-सी दाढ़ों के कारण अत्यन्त विकराल महान रूप को देखकर सब लोग व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ।(23)

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।।24।।

क्योंकि हे विष्णो ! आकाश को स्पर्श करने वाले, देदीप्यमान, अनेक वर्णों युक्त तथा फैलाये हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आपको देखकर भयभीत अन्तःकरणवाला मैं धीरज और शान्ति नहीं पाता हूँ।(24)

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास।।25।।

दाढ़ों के कारण विकराल और प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित आपके मुखों को देखकर मैं दिशाओं को नहीं जानता हूँ और सुख भी नहीं पाता हूँ। इसलिए हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप प्रसन्न हों।(25)

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः।।26।।
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः।।27।।

वे सभी धृतराष्ट्र के पुत्र राजाओं के समुदायसहित आपमें प्रवेश कर रहे हैं और भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा वह कर्ण और हमारे पक्ष के भी प्रधान योद्धाओं सहित सब के सब आपके दाढ़ों के कारण विकराल भयानक मुखों में बड़े वेग से दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरों सहित आपके दाँतों के बीच में लगे हुए दिख रहे हैं।(26,27)

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।

तथा तवामी नरलोकवीरा

विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति।।28।।

जैसे नदियों के बहुत- से जल के प्रवाह स्वाभाविक ही समुद्र के सम्मुख दौड़ते हैं अर्थात् समुद्र में प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे नरलोक के वीर भी आपके प्रज्वलित मुखों में प्रवेश कर रहे हैं।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा

विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।

तथैव नाशाय विशन्ति लोका-

स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।।29।।

जैसे पतंग मोहवश नष्ट होने के लिए प्रज्वलित अग्नि में अति वेग से दौड़ते हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही ये सब लोग भी अपने नाश के लिए आपके मुखों में अति वेग से दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं। (29)

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-

ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।

तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं

भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो।।30।।

आप उन सम्पूर्ण लोकों को प्रज्जवलित मुखों द्वारा ग्रास करते हुए सब ओर से बार-बार चाट रहे हैं। हे विष्णो ! आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत को तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है।(30)

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो

नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।

विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं

न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।।31।।

मुझे बतलाइये कि आप उग्र रूप वाले कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार हो। आप प्रसन्न होइये। हे आदिपुरुष ! आपको मैं विशेषरूप से जानना चाहता हूँ, क्योंकि मैं आपकी प्रवृत्ति को नहीं जानता।(31)

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो

लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।

ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे

येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।।32।।

श्री भगवान बोलेः मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय लोकों को नष्ट करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिए जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित योद्धा लोग है वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करने पर भी इन सब का नाश हो जाएगा।(32)

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।।33।।

अतएव तू उठ। यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीतकर धन-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब शूरवीर पहले ही से मेरे ही द्वारा मारे हुए हैं। हे सव्यसाचिन! तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा।(33)

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत् नान्।।34।।

द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा और भी बहुत-से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओं को तू मार। भय मत कर। निःसन्देह तू युद्ध में वैरियों को जीतेगा। इसलिए युद्ध कर।(34)

संजय उवाच
एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताजलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद् गदं भीतभीतः प्रणम्य।।35।।

संजय बोलेः केशव भगवान के इस वचन को सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़कर काँपता हुआ नमस्कार करके, फिर भी अत्यन्त भयभीत होकर प्रणाम करके भगवान श्रीकृष्ण के प्रति गदगद वाणी से बोलेः।(35)

अर्जुन उवाच
स्थाने हृषिकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः।।36।।

अर्जुन बोलेः हे अन्तर्यामिन् ! यह योग्य ही है कि आपके नाम, गुण और प्रभाव के कीर्तन से जगत अति हर्षित हो रहा है और अनुराग को भी प्राप्त हो रहा है तथा भयभीत राक्षस लोग दिशाओं में भाग रहे हैं और सब सिद्धगणों के समुदाय नमस्कार कर रहे हैं।(36)

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्।।37।।

हे महात्मन् ! ब्रह्मा के भी आदिकर्ता और सबसे बड़े आपके लिए वे कैसे नमस्कार न करें, क्योंकि हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! जो संत्, असत्, और उनसे परे अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं, वह आप ही हैं।(37)

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरुप।।38।।

आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं। आप इस जगत के परम आश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य और परम धाम हैं। हे अनन्तरूप ! आपसे यह सब जगत व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है।(38)

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।।39।।

आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजा के स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी पिता हैं। आपके लिए हजारों बार नमस्कार ! नमस्कार हो ! आपके लिए फिर भी बार-बार नमस्कार ! नमस्कार !!

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तुं ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।।40।।

हे अनन्त सामर्थ्य वाले ! आपके लिए आगे से और पीछे से भी नमस्कार ! हे सर्वात्मन्! आपके लिए सब ओर से नमस्कार हो क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप समस्त संसार को व्याप्त किये हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं।(40)

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।।41।।
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।।42।।

आपके इस प्रभाव को न जानते हुए, आप मेरे सखा हैं, ऐसा मानकर प्रेम से अथवा प्रमाद से भी मैंने 'हे कृष्ण !', 'हे यादव !', 'हे सखे !', इस प्रकार जो कुछ बिना सोचे समझे हठात् कहा है और हे अच्युत ! आप जो मेरे द्वारा विनोद के लिए विहार, शय्या, आसन और भोजनादि में अकेले अथवा उन सखाओं के सामने भी अपमानित किये गये हैं – वह सब अपराध अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाववाले आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ।(41,42)

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।।43।।

आप इस चराचर जगत के पिता और सबसे बड़े गुरु तथा अति पूजनीय हैं। हे अनुपम प्रभाव वाले ! तीनों लोकों में आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो कैसे हो सकता है।(43)

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।।44।।

अतएव हे प्रभो ! मैं शरीर को भलीभाँति चरणों में निवेदित कर, प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूँ। हे देव ! पिता जैसे पुत्र के, सखा जैसे सखा के और पति जैसे प्रियतमा पत्नी के अपराध सहन करते हैं – वैसे ही आप भी मेरे अपराध सहन करने योग्य हैं।(44)

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास।।45।।

मैं पहले न देखे हुए आपके इस आश्चर्मय रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है, इसलिए आप उस अपने चतुर्भुज विष्णुरूप को ही मुझे दिखलाइये ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! प्रसन्न होइये।(45)

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते।।46।।

मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूँ, इसलिए हे विश्वस्वरूप ! हे सहस्रबाहो ! आप उसी चतुर्भुजरूप से प्रकट होइये।(46)

श्रीभगवानुवाच
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।।47।।

श्रीभगवान बोलेः हे अर्जुन ! अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्ति के प्रभाव से यह मेरा परम तेजोमय, सबका आदि और सीमारहित विराट रूप तुझको दिखलाया है, जिसे तेरे अतिरिक्त दूसरे किसी ने नहीं देखा था।(47)

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।।48।।

हे अर्जुन ! मनुष्यलोक में इस प्रकार विश्वरूपवाला मैं न वेद और यज्ञों के अध्ययन से, न दान से, न क्रियाओं से और न उग्र तपों से ही तेरे अतिरिक्त दूसरे के द्वारा देखा जा सकता हूँ।(48)

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।

व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।।49।।

मेरे इस प्रकार के इस विकराल रूप को देखकर तुझको व्याकुलता नहीं होनी चाहिए और मूढभाव भी नहीं होना चाहिए। तू भयरहित और प्रीतियुक्त मनवाला होकर उसी मेरे शंख-चक्र-गदा-पद्मयुक्त चतुर्भुज रूप को फिर देख।(49)

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा।।50।।

संजय बोलेः वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूप को दिखलाया और फिर महात्मा श्रीकृष्ण ने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत अर्जुन को धीरज बंधाया।(50)

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।।51।।

अर्जुन बोलेः हे जनार्दन ! आपके इस अति शान्त मनुष्यरूप को देखकर अब मैं स्थिरचित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो गया हूँ।(51)

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः।।52।।

श्री भगवान बोलेः मेरा जो चतुर्भुज रूप तुमने देखा है, यह सुदुर्दर्श है अर्थात् इसके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं। देवता भी सदा इस रूप के दर्शन की आकांक्षा करते रहते हैं।(52)

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।53।।

जिस प्रकार तुमने मुझे देखा है – इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला मैं न तो वेदों से, न तप से, न दान से, और न यज्ञ से ही देखा जा सकता हूँ।(53)

भक्तया त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।।54।।

परन्तु हे परंतप अर्जुन ! अनन्य भक्ति के द्वारा इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए तत्त्व से जानने के लिए तथा प्रवेश करने के लिए अर्थात् एकीभाव से प्राप्त होने के लिए भी शक्य हूँ।(54)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।55।।

हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे ही लिए सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को करने वाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियों में वैरभाव से रहित है, वह अनन्य भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।(55)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नाम एकादशोऽध्यायः ।।11।।

इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के
श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में विश्वरूपदर्शनयोग नामक ग्यारहवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ